

श्रीमद्भागवत में भक्ति का स्वरूप

लीला बहन एस.पटेल, सहायक प्राध्यापक

एम.एम.चौधरी आर्ट्स कालेज

राजेंद्र नगर, गुजरात, भारत

शोध संक्षेप

श्रीमद्भागवत संस्कृत साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति है। उसके लक्ष्य, साधन और शैली महान तथा प्रसादपूर्ण है। उसका अध्यात्म, उसका काव्य और समाज संगठन संपूर्ण संसार के लिए गौरव की वस्तु है। जीवों के परम कल्याण के लिए ही इस ग्रन्थ रत्न का आविर्भाव हुआ है। वर्णन की दृष्टि से श्रीमद्भागवत का चार प्रकार से विभाजन किया जा सकता है - घटनात्मक, उपदेशात्मक, स्तुत्यात्मक और गीतात्मक। प्रस्तुत शोध पत्र में यहाँ श्रीमद्भागवत में भक्ति के स्वरूप पर विचार किया जायेगा।

प्रस्तावना

श्रीमद्भागवत के प्रत्येक अध्याय और प्रत्येक संवाद में ऐसे उपदेश मिलते हैं, जिनके अनुसार आचरण करने से जीव अपना परम कल्याण प्राप्त कर सकता है। सभी उपदेशों का सार है विषयों की आसक्ति छोड़कर अपने कर्तव्य कर्मों का अनुष्ठान करते हुए भगवान का स्मरण करने रहना। आज तक संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, उन्होंने एक स्वर से यह बात कही है। श्रीमद्भागवत में जगह-जगह तरह-तरह से यही बात दोहरायी गयी है। ज्योतिषचक्र का वर्णन करके, भूगोल का वर्णन करे और अनेक राजा-प्रजाओं का वर्णन करके यही बात चित्त में बैठाने की चेष्टा की गयी है कि जीव जीवन की पूर्णता केवल भगवान को प्राप्त करने में ही है। चाहे इस बात को थोड़े में समझ लिया जाए या समस्त शास्त्रों को कंठस्थ कके समझा जाए, समझना यही पड़ेगा, बिना समझे निस्तार नहीं है।

श्रीमद्भागवत वैष्णवों की परम सम्पत्ति है। और परमहंसों के सर्वोच्च ज्ञान का इसमें प्रकाश हुआ है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि इसके सुनने की इच्छा मात्र से तत्क्षण हृदय में आकर भगवान बैठ जाते हैं। श्रीमद्भागवत की सबसे बड़ी विशेषता है - 'यस्मिन् ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्यमाविकृतम्' अर्थात् जिसमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से युक्त नैष्कर्म्य का आविष्कार किया गया है। और ग्रंथों में जिस नैष्कर्म्य का वर्णन है वह ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से रहित है, परंतु इसका नैष्कर्म्य उनके सहित है। श्रीमद्भागवत ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि 'नैष्कर्म्यमय्यच्युतभाववर्जितं न शोभते'। भगवद्भक्ति रहित ज्ञान की सर्वोच्च स्थिति नैष्कर्म्य भी शोभायमान नहीं होती। भक्ति अर्थात् ज्ञान की शोभा इसीमें है कि वह भक्तियुक्त हो। जो लोग भक्तिरहित ज्ञान सम्पादन करते हैं, उनकी निंदा भी स्थान-स्थान पर मिलती है।

श्रीमद्भागवत में भक्ति का केवल साधन रूप में ही वर्णन किया है, ऐसी बात नहीं है। कई जगहों पर तो ज्ञान और मुक्ति से भी बढ़कर भक्ति को बताया गया है। पंचम स्कंध में आया है -

‘भुक्तिं ददाति किञ्चित न तु भक्तियोगम्।’
अर्थात् भगवान मुक्ति तो देते हैं परंतु भक्ति नहीं देते। तात्पर्य यह है कि भक्ति, मुक्ति से भी बड़ी है। भगवान के सेवाप्रिय भक्तों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि साष्टि, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य भक्ति भगवान के देने पर भी भक्त नहीं लेते, वे केवल भगवान की सेवा ही करना चाहते हैं। तीसरे स्कंध में भगवान कपिल ने अपनी माता देवहृति से कहा है कि, “ऊंची श्रेणी के संत मुझसे एक होना नहीं चाहते, वे मेरी सेवा करते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तों को मैं दर्शन देता हूँ। उनसे बातें करता हूँ और उनका सेवक बन जाता हूँ। (भागवत 3/25/34-40) इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि भक्ति स्वयं साध्य और फलरूप भी है।

श्रीमद्भागवत में भक्ति का स्वरूप

श्रीमद्भागवत में स्थान-स्थान पर भक्ति और ज्ञान के साधनों का वर्णन हुआ है। भगवान के स्वरूप, गुण, लीला, नाम आदि का श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण, उनके श्रीविग्रह को अपने सामने साक्षात् अनुभव करते हुए उनके सख्य, दास्य आदि संबंध का स्थापन और संपूर्ण भाव से उनके प्रति आत्मसमर्पण यह नवधा भक्ति है। श्रीमद्भागवत में इस नवधा भक्ति के लक्षण और उदाहरण बहुत से स्थानों में पाये जाते हैं। निर्गुण भक्ति योग का लक्षण करते हुए कहा गया है कि भगवान वर्णन सुनकर चित्त की संपूर्ण वृत्तियां इस प्रकार भगवान को विषय करने लगे जैसे

गंगाजी की धारा अखण्ड रूप में समुद्र में गिरती है। यह स्मरण की अविच्छिन्नता ही निर्गुण भक्ति है। ज्ञान का लक्षण करते हुए कहा गया है कि जब अपनी अनुभूति से ऐसा निश्चय हो जाए कि यह भाव और अभाव रूप समस्त कार्य-कारणात्मक जगत अविद्या के कारण ही आत्मा में प्रतीत हो रहा है। वास्तव में इसकी कोई सत्ता नहीं है, केवल आत्मा ही आत्मा है, तब उसको ब्रह्मदर्शन समझना चाहिए। और भी कहा है कि जो वस्तु अन्वय और व्यतिरेक की दृष्टि से सर्वदा अबाध है, उसकी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। आत्मा के अज्ञान का इतना ही रूप है कि केवल आत्मतत्त्व में विकल्प की सत्ता दृष्टिगोचर हो रही है। इस ज्ञान की उपलब्धि अमानित्व आदि साधन और तत्त्वविचार के द्वारा होती है। जब ज्ञान और भक्ति दोनों पर ही विचार करते हैं तब ऐसा जान पड़ता है कि दोनों ही दृष्टियां जगत की आसक्ति और चिंतन को छोड़कर केवल परमात्मा में लीन हो जाने के पक्ष में हैं। परमात्मा का स्वरूप सगुण है कि निर्गुण, निराकार है कि साकार ? यह भेद परमात्मा के पास पहुंचने पर खुल जाता है। जो लोग विषयों की आसक्ति और चिंतन न छोड़कर परमात्मा के चिंतन और स्मरण की चेष्टा नहीं करते और परमात्मा के स्वरूप को सगुण अथवा निर्गुण सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं, वे केवल कल्पना लोक में बुद्धि की सीमा के भीतर ही चक्कर काट रहे हैं। परमात्मा का स्मरण करते रहने से स्वयं उसके स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है, चाहे वह स्वरूप सगुण हो या निर्गुण। सुख-दुःख के हेतु कोई मनुष्य देवता अथवा ग्रह आदि नहीं है। केवल मन ही कारण है। वही संसार चक्र की धुरी है। उसी के आधार पर

अच्छी-बुरी सृष्टि होती है। आत्मा तो असंग है। उसका कोई स्पर्श नहीं कर सकता। मन सचेष्ट होता है - उसे अपना स्वरूप मान लेने पर आत्मा बद्ध-सा हो जाता है। सच धर्म-कर्म, यम-नियम, अध्ययन-दान, मनोनिग्रह के लिए है। इसके शांत हो जाने पर सर्वत्र शांति है। जिसका मन शांत नहीं है, उसकी क्रिया का कोई उपयोग नहीं है, जिसका मन शांत है उस पर क्रिया का कोई प्रभाव नहीं। सब इंद्रियां मन के वश में हैं। मन को जीत लिया जाए तो सबको जीत लिया। उसको न जीतकर जगत के शत्रुओं को जीतना मूर्खता है। शत्रुओं का स्रष्टा मन है। मन ने ही शरीर को अपना माना, शरीर के रूप में मन ही है वही भटक रहा है। भौतिक पदार्थ, भौतिक शरीर को दुःख पहुंचा सकते हैं। अपनी ही दांत से जीभ कट जाए तो क्रोध किस पर करें ? यदि देवता ही दुःख देते हों तो दे लें, वे केवल अपने विकार को ही प्रभावित कर सकते हैं। आत्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। फिर कौन किसी को कैसे दुःख दे संपूर्ण आत्मा ही है। इसलिए श्रीमद्भागवत में भक्ति को विशिष्ट महत्व दिया गया है। भक्त का हृदय भगवान के दर्शन के लिए उसी प्रकार छटपटाता है, जिस प्रकार पक्षियों के पंखरहित बच्चे माता के लिए, भूख से व्याकुल बछड़े दूध के लिए तथा प्रिय के विरह में व्याकुल सुंदरी अपने प्रियतम के लिए छटपटाती है। भागवत के अनुसार भक्ति ही मुक्ति की प्राप्ति में प्रधान साधन है। ज्ञान-कर्म भी भक्ति के उदय होने से ही सार्थक होते हैं। कर्म का उपयोग वैराग्य उत्पन्न करने में है। जब तक वैराग्य की उत्पत्ति न हो जाय, तब तक वर्णाश्रम विहित आचारों का निष्पादन नितांत आवश्यक है। कर्मफलों को भी भगवान को समर्पण कर देना ही

उनके 'विषदंत' को तोड़ना है। श्रेय की मूलस्रोत भक्ति को छोड़कर केवल बोध की प्राप्ति के लिए उद्योगशील मानवों का प्रयत्न उसी प्रकार निष्फल है जिस प्रकार भूसा कूटने वाले का यत्न।

अतः भक्ति दो प्रकार की मानी जाती है - साध्यरूपा और साधनरूपा। साधन भक्ति नौ प्रकार की होती है - विष्णु का श्रवण-कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन। भागवत में सत्संगति की महिमा का वर्णन बड़े सुंदर शब्दों में किया गया है।

साध्यरूपा या फलरूपा भक्ति प्रेममयी होती है। जिसके सामने अनन्य भगवत्पादाश्रित भक्त ब्रह्म के पद, इंद्र पद, चक्रवर्तीपद, लोकाधिपत्य तथा योग की विविध विलक्षण सिद्धियों को कौन कहे मोक्ष को भी नहीं चाहता। भगवान के साथ नित्य वृंदावन में ललित विहार की कामना करने वाले भागवच्चरण चंचरीक भक्त नीरस मुक्ति को प्रयास मात्र मानकर तिरस्कार करते हैं।

इस प्रकार भक्ति शास्त्र के सर्वस्व भागवत में भक्ति का रसमय स्रोत भक्तजनों के हृदय आप्लावित करता हुआ प्रवाहित हो रहा है। भागवत के श्लोकों में एक विचित्र अलौकिक माधुर्य है। अतः भाव तथा भाषा की दृष्टि से श्रीमद्भागवत का स्थान हिंदुओं के धार्मिक साहित्य में अनुपम है। सर्ववेदांतसार भागवत का कथन यथार्थ है:

श्रीमदभागवतं पुराणमभक्तं यद् वैष्णवनां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकमभक्तं ज्ञानं परं गीयते।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतम्
तच्छृण्वन् विपठन् विचारणपरो भक्त्या
विमुच्येनः॥

निष्कर्ष



श्रीमदभागवत संस्कृत साहित्य का एक अनुमप रत्न है। यह निगम कल्पतरु का अमृतमय फल है। वल्लभाचार्य भागवत के महर्षि व्यासदेव की समाधि भाषा कहते हैं। श्रीमदभागवत अद्वैत तत्व का ही प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में करता है। भागवत का प्रभाव वल्लभ संप्रदाय और चैतन्य संप्रदाय पर बहुत अधिक हुआ।

संदर्भ ग्रंथ:

- 1 भारतीय संस्कृति तत्वमंथन, आचार्य जावड़ेकर, गुजरात विद्यापीठ, प्रथम आवृत्ति, 1986
- 2 श्रीमदभागवत, पुराजी डा.विनोद, पार्श्व प्रकाशन, प्रथम आवृत्ति 1986
- 3 महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, बारहवां पुनर्मुद्रण संस्करण, 2066
- 4 श्रीमदभगवद्गीता रहस्य, बालगंगाधर तिलक, राधा पब्लिकेशन, नूतन संस्करण, सन् 2007
- 5 श्रीमदभागवत महापुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, 66वां पुनर्मुद्रण संस्करण 2066